

महाशिवरात्री पूजा - आत्मसाक्षात्कार की विशेषतायें

पुणे, २३ फरवरी १९९०

अज शिवरात्री है और शिवरात्री में हम शिव का पूजन करने वाले हैं। बाह्य में हम अपना शरीर है और उसकी अनेक उपाधियाँ, मन, अहंकार बुद्धि आदि हैं और बाह्य में हम उसकी चालना कर सकते हैं, उसका प्रभुत्व पा सकते हैं। इसी तरह में जो कुछ अंतरिक्ष में बनाया गया है, वह हम सब जान सकते हैं, उसका उपयोग कर सकते हैं। उसी प्रकार इस पृथ्वी में जो कुछ तत्व हैं और इस पृथ्वी में जो कुछ उपजता है उन सबको हम अपने उपयोग में ला सकते हैं। इसका सारा प्रभुत्व हम अपने हाथ में ले सकते हैं। लेकिन ये सब बाह्य का आवरण है। वो हमारी आत्मा है, शिव है। **जो बाह्य में है वो सब नश्वर है।** जो जन्मेगा, वो मरेगा। जो निर्माण होगा उसका विनाश हो सकता है। किन्तु जो अन्तरतम में हमारे अन्दर आत्मा हैं, जो हमारा शिव है, जो सदाशिव का प्रतिबिम्ब है, वो अविनाशी है, निष्काम, स्वक्षन्द। किसी चीज़ में वो लिपटा नहीं, वो निरंजन है। उस शिव को प्राप्त करते ही या उस शिव प्रकाश में आलोकित होते ही हम भी धीरे-धीरे सन्यस्त हो जाते हैं। बाह्य में सब आवरण है। वो जहाँ के तहाँ रहते हैं। लेकिन अन्तरतम में जो आत्मा है वो अचल, अटूट और अविनाशी है वो हमेशा के लिए अपने स्थान पर प्रकाशित होते रहता है। तब हमारा जीवन आत्मसाक्षात्कार के बाद एक दिव्य, एक भव्य, एक पवित्र जीवन बन जाता है। इसलिए मनुष्य के लिए आत्मसाक्षात्कार पाना अति आवश्यक है। उसके बगैर उसमें सन्तुलन नहीं आ सकता, उसमें सच्ची सामूहिकता नहीं आ सकती, उसमें सच्चा प्रेम नहीं आ सकता। और सबसे अधिक तो उसमें सत्य ही जाना नहीं जा सकता। सो सारा ज्ञान, जिसे कि शुद्ध ज्ञान कहा जाता है, जिसे कि विद्या कहा जाता है, वो इस आत्मा के ही प्रकाश में जानी जा सकती है, जब मनुष्य इस आत्मा के प्रकाश से आलोकित हो जाता है, तो उसका देखना भी निरंजन हो जाता है। वो देखना मात्र होता है। कोई चीज़ को देखते वक्त उसमें कोई उसकी प्रतिक्रिया नहीं होती है, देखता है और देखने से ही पूरा ज्ञान हो जाता है उस चीज़ का कि यह चीज़ क्या है।

तो, मनुष्य हमेशा जब आत्मसाक्षात्कार से प्लावित नहीं होता तो वो एक तरह से अपने ही बारे में सोचता रहता है। वो यही सोचता है कि मैं आज क्या खाना खाऊँगा, क्या किसके यहाँ बड़ा अच्छा खाना मिला था। आज कौन से खाने का इन्तजाम करें। नहीं तो फिर वो ये सोचता है कि आज मुझे कहाँ जाना चाहिए, कौन सी जगह मेरा महत्व होगा, कौनसी जगह मुझे लोग मानेंगे, कौनसी सभा में मैं जाकर चमकूँगा। तीसरा सोचेगा कि मैं कौनसा कार्य करूँ जिसके कारण मैं बहुत रुपया इकट्ठा कर लूँ, बहुत मेरे पास पैसा आ जाए। संसार की सारी सम्पत्ति मैं पा लूँ और सारी दुनिया को मैं ठीक कर लूँ। चौथा सोच सकता है कि कितने मेरे बच्चे हैं, और इनके लिए मुझे क्या करना चाहिए और मेरे बच्चों के बच्चों के लिए क्या करना चाहिए और मेरे रिश्तेदार हैं, उनके लिए मुझे क्या करना चाहिए। इस प्रकार के जो कुछ सारे विचार हैं, यह अपने में लक्षित हैं, कि उसमें मेरा क्या स्थान है। मैं कहाँ हूँ। मेरा उसमें कौनसा विशेष लाभ होने वाला है। मैं आज कौनसे कपड़े पहनूँगा। मैं आज किसको किस तरह से प्रभावित करूँगा। मैं आज कौनसी बात कहूँगा जिससे सब लोग अचंभा में पड़ जाएं। मैं कौनसी कोई ऐसी तरकीब दिखाऊँगा जिससे लोग सोचें कि क्या यह आदमी है! कितना बढ़िया, कितना होशियार, कितना चमत्कारपूर्ण।

दूसरा जो है वो अपने को बहुत नम्रतापूर्वक सबके सामने बार-बार झुक-झुक के नमस्कार करेगा, ये दिखाने के लिए कि मैं बड़ा नम्र हूँ और मैं सबसे बड़े आदर से रहता हूँ। मैं बहुत ज्यादा संस्कृति से भरपूर हूँ। कोई तीसरा कहेगा कि मैं विद्यवान की सभा में जाकर वाद-विवाद करूँगा। मैं बहुत सारी किताबें पढ़ूँगा, उससे मैं अपनी बुद्धि को बड़ा प्रबल कर लूँगा। मैं बुद्धि से, अपने को ऐसे विशेष रूप में प्रकाशित करूँगा कि लोग सोचेंगे कि कितना बड़ा लेखक है, कि कितना बड़ा वक्ता है, कितना बड़ा बोलने वाला है। फिर इसी प्रकार कोई अपने संगीत के बारे में सोचता है, तो कोई अपने कला के बारे में सोचता है। हर चीज़ में आदमी अपने बारे में सोचता है कि मेरी प्रगति कैसी होगी, उससे मैं क्या करूँगा। और बहुत से समाज कार्य भी लोग करते हैं, ये नहीं कि नहीं करते हैं। जैसे कि कोई आदमी अगर डूब रहा है तो उसको बचाने के लिए जो कोई आदमी कूदता है, तो वो भी यही सोच के कि उसके अन्दर जो कुछ 'मैं' है, वह उस आदमी में भी है, इसलिए वह उसको बचाता है। उसको अहसास नहीं होता कि आदमी डूब रहा है इसलिए

उसको बचाया है। और उससे भी ऊँचे कार्य मनुष्य करता है। अपने देश के लिए बहुत त्याग करता है, इसलिए कि ये मेरा देश है। मेरे देश के लोगों को सुख मिलना चाहिए। इस तरह से उसमें भव्यता आने लगती है। उसमें महानता आने लगती है। फिर कोई सोचता है कि मेरी जो कला है, वो ऐसी फैलनी चाहिए कि विश्व में हमारे देश की कला फैले। इस तरह से मनुष्य थोड़ा-थोड़ा सा अपने को सामूहिकता में घूलते देख कर खुश होता है। पर उस सब में अपेक्षित होता है कि उसे विजय मिले, उसका यश गान हो, लोग उसकी वाह, वाह करें, यह अपेक्षित रहता है। इसलिए वह सुख और दुःख के चक्कर में फँस जाता है। यह अपेक्षित रहता है कि उसका नाम सब पर छपे, लोग उसको बहुत माने और उसकी बड़ी मान्यता रखें और कहीं भी वो खड़ा हो, तो कभी भी वो अपमानित न हो। कोई उसको किसी भी तरह से नीचा न करें। कोई भी कितना भी बड़ा संयोजक हो, गर वो आत्मसाक्षात्कारी नहीं है तो उसमें उसका जो बिन्दु आप अपना है, 'मैं' हूँ, जो 'मैं' का बिन्दु है, वो कितना भी बड़ा उसका परिधि बन जाए, पर उसका चित्त उस 'मैं' पर ही रहता है। उस परिधि में उसका चित्त नहीं जाता।

किन्तु जब वह अपने आत्मा से एकाकारिता प्राप्त करता है, तब वह और तरह से बात सोचता है तब वह इस तरह से सोचता है कि इसका उपयोग समाज के लिए कैसे हो सकता है, दुनिया के लिए कैसे हो सकता है। इस आंतरिक पीड़ा के जो लोग हैं, इनके लिए क्या हो सकता है, दुनिया के लिए क्या करना चाहिए। उसका सारा ही विचार अपने से बदल के, उन चीजों की ओर जाता है। जब किसी पेड़ को देखता है, उस पेड़ को देखते ही वह सोचता है विधाता ने कितना सुन्दर यह पेड़ बनाया हुआ है। काश! कि मैं भी ऐसा सुन्दर होता। काश! कि मैं भी ऐसा छायाप्रद होता कि लोग मेरे छाया में आकर बैठते। किन्तु मैं ऐसा नहीं। मुझे ऐसा ही होना चाहिए। उस पेड़ की स्तुति में वो गाने लग जाए। किसी हिमालय को देखेगा, तो वो हिमालय की ही स्तुति गाता रहेगा। लेकिन जो मनुष्य आत्मनिष्ठ नहीं होता है, **जो अपनी आत्मा को जानता नहीं वह हमेशा अपनी ही स्तुति गाता रहता है**, कि मैं हिमालय पर गया था, मैंने हिमालय पर ये काम किया। हिमालय में मेरी कब्र बना देना। हिमालय पर मेरा झंडा गाड़ देना, हिमालय पर मेरे देश का झंडा लगा देना। इस प्रकार एकदम दो तरह के लोग होते हैं। एक जो कि आत्मसाक्षात्कारी हैं, आत्मा के प्रकाश में अपने को सारी चीजों की ओर दृष्टि डालते वक्त एक व्यापकता से देखते हैं और दूसरी बात कि उनमें यह कभी धारणा नहीं होती कि यह कार्य करने से मेरा नाम बढ़ जाए, या मेरा यशगान लोग करें। कोई लोग उन्हें मार भी डाले, सताए, छले, या चाहे कोई उनकी बुराई करे, वो कभी भी इस चीज़ का बुरा नहीं मानते। जैसे कि आप देख सकते हैं कि ईसामसीह को सूली पे चढ़ाया गया था। सूली पर चढ़ते वक्त उन्होंने एक प्रार्थना की कि, 'हे जगदीश, ये लोग जानते ही नहीं कि ये लोग क्या गलती कर रहे हैं। इनको तुम माफ कर दो।' क्योंकि उनको यही फिक्र थी कि मुझे इतना इन लोगों ने सताया तो न जाने इनका क्या हाल होगा। तो ऐसा **जो आत्मसाक्षात्कारी होता है वह निस्पृह होता है**। उसके अन्दर किसी प्रकार का खिंचाव नहीं रहता कि यह चीज़ होनी ही चाहिए, यह बनना ही चाहिए, वो संकल्प नहीं करता। हो जाएगा तो अच्छा, और नहीं हो जाएगा तो भी अच्छा और जब वो किसी यश और जय को वरण नहीं करता है, उसकी अपेक्षा ही नहीं करता है, तो उसको सुख और दुःख का चक्कर आता नहीं। सुख और दुःख में वो समान हो जाएगा। कोई दुःख आया तो उसे भी देख सकता है, सुख आया तो उसे भी देख सकता है और वो समझता है कि यह रात और दिन का मामला है। खुद वह स्वयं आनन्द में विभोर है क्योंकि **आत्मा आनन्द का ही स्रोत है**। आनन्द के स्रोत में विभोर हो वह किसी भी चीज़ की लालसा नहीं करता। उसको कभी किसी चीज़ की लालसा होती ही नहीं कि इसकी चीज़ को ले लूँ, खसोट लूँ कि इसको ये कर लूँ। उसके दिमाग में यह बातें आती ही नहीं। उसको कभी भी अपने मन को 'कंट्रोल' (काबू) ही नहीं करना पड़ता। वो कहते हैं कि अपने मन व अपने इन्द्रियों को कंट्रोल करिए। वो पूरा कंट्रोल हो जाता है। उसको कोई लालसा नहीं होती, कि ये चीज़ मुझे चाहिए ही और अब उसके लिए प्राण लगा रहे हैं। लोग हैं कि कोई नई चीज़ के प्रलोभन में इस तरह से दौड़ते हैं कि जैसे उनके लिए वह ही सब कुछ जिन्दगी है और जब वह चीज़ मिलती है, उसके बाद फिर दूसरे चीज़ के लिए दौड़ने लग जाते हैं। अगर वो नहीं मिलती है तो फिर उनको इतना दुःख होता है, दारुण दुःख होता है कि वो सोचते हैं कि मेरे जिन्दगी का सब कुछ खत्म हो चुका। फिर ऐसे मनुष्य का जो चित्त होता है वह हर चीज़ को जानता हुआ चलता है। इसके चित्त में ये शक्ति होती है कि जहाँ भी उसका चित्त पहुँच जाए, वह चित्त स्वयं ही कार्यान्वित हो जाता है।

अब चित्त जो है ब्रह्मदेव की देन है। लेकिन जब ब्रह्मदेव या ब्रह्मदेव का सिर्फ ब्रह्म ही रह जाता है तो ऐसा चित्त इतना

प्रभावशाली होता है, इतना प्रेममय होता है, इतना सूझबूझ वाला होता है और इतना होशियार होता है कि वो अपने कार्य को बड़े ही सुगम तरीके से कर लेता है। मतलब ये कि ऐसे आदमी का चित्त परम चैतन्य से एकाकारिता प्राप्त कर लेता है और जब परम चैतन्य से एकाकारिता हो गयी तो परम चैतन्य तो सारे कार्य को करता ही रहता है। तो जितने भी कर्म हैं दुनिया के वो सिर्फ ये ब्रह्मशक्ति, ये परम चैतन्य करते हैं और ये जो कर्म मनुष्य कर रहा है वो उस वक्त ये नहीं सोचता कि मैं कर रहा हूँ। उसको इसकी अनुभूति ही नहीं होती। वो तो यही सोचता है कि हो रहा है। ये घटित हो रहा है। ये बन रहा है। अकर्म में जिसको कहते हैं उतरना क्योंकि परम चैतन्य ही सारे कार्य कर रहे हैं तो मैं एक माध्यम मात्र बीच में हूँ। आत्मा के प्रकाश से ही यह हो सकता है। नहीं तो कभी नहीं हो सकता है। अगर मनुष्य कहे कि मैं सारे कार्य करता हूँ, परमात्मा पर छोड़ देता हूँ पर छोड़ नहीं सकता, ये झूठ बात है। इस तरह कोई सोचता है तो अपने को दगा दे रहा है और झूठ पर खड़ा है। सच बात यह है कि परम चैतन्य ही सब कार्य को कर रहा है, बहुत सुगम तरीके से। इतना सुन्दर उनका कौशल्य है, इतनी युक्तियाँ हैं कि मनुष्य आश्चर्य में पड़ जाता है कि किस तरह वो कार्य करता है। और जब मनुष्य उस प्रकाण्ड श्रद्धा स्वरूप अपने एक विशाल हृदय में बहुत से लोग बताते हैं कि माँ इतना बड़ा चमत्कार हो गया, मैंने तो सिर्फ प्रार्थना की और कार्य हो गया, इतना बड़ा चमत्कार हो गया।

कर्म तो हम नहीं करते हैं। कर्म तो परम चैतन्य कर रहा है। सारे कर्म वही करते हैं, हम तो 'मिथ्या' सोचते हैं कि समझ लीजिए कि कुछ चाँदी मिल गई, जो मरी हुई चीज़ थी, उससे कुछ बना दिया तो सोचा कि हमने बड़ा कुछ बना दिया। हम तो मरे से मरा बनाते हैं। लेकिन सारा जीवन्त कार्य जो है परम चैतन्य करता है। और ये जो परम चैतन्य की हमें देन मिली हुई है और उसका जो हमें अनुभव हुआ है वो सारा आत्मसाक्षात्कार से है। क्योंकि परम चैतन्य जो है, वो आदिशक्ति है, जो कि शिव की इच्छा शक्ति है, उसी का प्रकाश है। इस परम चैतन्य के आशीर्वाद से ही आप लोग सारे कर्म करेंगे। जिस दिन ये आपमें घटित हो जाए, आप अद्भुत लोग हो सकते हैं।

लेकिन 'मैं यह कर रहा हूँ', यह जब भावना आई, और 'मैंने ये किया' और 'मैं ये करना चाहता हूँ', या कोई जोर जबरदस्ती किसी भी चीज़ की, तो इसका मतलब यह है कि आत्मा का प्रकाश पूरी तरह से आपके अन्दर अभी नहीं आया है। सो पूरा कर्म ही ये परम चैतन्य कर रहा है तो आप अकर्म में आ गये, जब आप कोई कार्य ही नहीं कर रहे, जैसे कि ये बल्ब कहे कि 'मैं बिजली दे रहा हूँ' तो गलत बात है। आपके अन्दर वही परम चैतन्य कार्य कर रहा है, जो लोग आत्मसाक्षात्कारी हैं। जिसने आपको बनाया, आपको घड़ाया। आपका शरीर, सब चीज़ जो बनी है वो उसी परम चैतन्य की कृपा से बनी है। और उसके बाद आज जो मनुष्य बनके भी, आप जो आत्मसाक्षात्कारी बन गए, वो भी उस परम चैतन्य का ही आशीर्वाद है। तो ऐसे मनुष्य में अहंकार कैसे आ सकता है। जब वो जानता है कि मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूँ। जैसे कि एक आर्टिस्ट है और उसके हाथ में कूँचली (ब्रश) है और वह कूँचली जानती है कि मैं कुछ कार्य नहीं करती हूँ, यह तो एक आर्टिस्ट है, जैसे कि मैं आपको कृष्ण की बात बताती हूँ कि कृष्ण की मुरली ने कहा कि, 'मुझे लोग क्यों कहते हैं कि मैं बजती हूँ पर बजाने वाला तो कृष्ण है। मैं तो खोखली हूँ।' सो वो खोखलापन जिसको अहंकाररहित कहते हैं, पूरी तरह जब हमारे अन्दर स्थापित हो जाता है तब हम सोच सकते हैं, कि हमारे अन्दर जो एक विचार था कि, 'हम ये कार्य करते हैं, वो कार्य करते हैं' कितना दुःखदायी था, कितना परेशान करने वाला। क्योंकि मैं यह कार्य कर रहा था और 'मैंने' ये कार्य किया और उस कार्य का कोई 'फल' ही नहीं निकला, इसलिए मैं दुःखी हो जाता हूँ। मैंने यह कार्य किया और इसमें मुझे बड़ा यश मिल गया तो और मेरा दिमाग खराब हो जाता है। किन्तु मैंने यह कार्य नहीं किया, करने वाला परम चैतन्य का सारा कौशल्य है, तो जो हुआ सो ठीक ही है। गर समझ लीजिए हमारा रास्ता कहीं खो गया, हम गलत रास्ते से आ गए। उस समय कोई यह सोच सकता है कि 'मैं गलत रास्ते से आ गया। बड़ी गलती हो गई। मुझे इस रास्ते से नहीं जाना चाहिए था।' लेकिन एक आत्मसाक्षात्कारी सोचता है कि यहाँ से जाना जरूरी होगा इसलिए मैं जा रहा हूँ। तो उसको दुःख नहीं होने वाला, तकलीफ नहीं होने वाली। वह ये नहीं सोचने वाला कि 'इस रास्ते से क्यों आया, इस रास्ते से न आता तो मेरा ठीक रहता, मैं गलत रास्ते में आ गया।' यह कुछ वह सोचता नहीं। सोचता है, ठीक है। उसके सामने आप हजार विनप कर दीजिए, 'भाई कैसे हैं,' 'ठीक हैं।' उसके सामने कोई चटनी या थोड़ा पापड़ रख दीजिए, 'भाई, कैसा था?' 'बढ़िया था' आप कहेंगे कि कैसा आदमी है ये, उसमें कोई स्वाद नहीं। उसको कुछ भी दो कहता है 'बहुत अच्छा है।' यह है किस तरह का आदमी! फिर आप उसे महलों में रखिए वो राजा जैसा

बैठा रहेगा। और आप उसको जंगलों में रखिए तो जंगलों में रह लेगा, उसको आप पेड़ पर बैठा दीजिए, वह बैठा रहेगा। उसको कोई शिकायत होगी कैसे? जब कि वो जानता है कि परम चैतन्य ही मुझे इधर से उधर हटा रहा है। तो फिर शिकायत किससे करें। उसको आप मारिये तो कहेगा-ठीक है और अगर या हार पहनाओ तो कहेगा कि ठीक है, दोनो उनके लिए ठीक है क्योंकि **आत्मा जो है वो किसी चीज़ में चिपकता नहीं।** जब आप किसी चीज़ में चिपक जाते हैं जैसे कि 'मेरी प्रतिष्ठा, मैं बड़ा आदमी, मैं छोटा आदमी, मैं बड़ा प्रतिष्ठित हूँ या मैं ऐसा हूँ' तब आपको लगता है कि इन्होंने मेरे साथ ऐसा क्यों किया। लेकिन असल में जो आदमी बैठ गया, उसको यह महसूस ही नहीं होता, वो अपने आत्मा में ही संतुष्ट रहता है। वह कोई बक-बक नहीं करता। जब बोलना है तब बोलता है, नहीं बोलना है तब नहीं बोलता। किसी ने कुछ कह दिया उसे सुन लेता है, गर कुछ ज्ञान की बात है तो उसे सुन लेता है और अज्ञान की बात है तो उसे भी सुन लेता है। उसे पता होता है कि यह ज्ञान है और ये अज्ञान है। अगर समझ लीजिए आपने पूछ लिया कि 'इस जात के लोग कैसे हैं?' वह कहेगा 'ठीक हैं-इन लोगों में ये गुण है, यह-यह दोष है उनके।' गुण का वर्णन मात्र कर देगा, पर यह नहीं कहेगा कि मुझे इनसे नफरत है। यह कभी नहीं कहेगा। क्योंकि घृणा करना एक पाप है और इसलिए उससे कोई पाप ही नहीं हो सकता। जो भी वो करेगा वह पुण्य होगा।

समझ लीजिए उसे किसी को मार डालता है, अब देवी है, वो भूतों को मारती है। वो कोई पाप नहीं। वो नहीं मारे तो पाप फैलेगा। तो वो अपने काम से चूकता नहीं। उसे जो करना है वो करता है। क्योंकि परम चैतन्य मार रहा है। मैं कौन मार रहा हूँ? परम चैतन्य गर चाहते हैं कि इसको मार डालूँ, तो बस मार डालता है, पर परम चैतन्य कहते हैं कि तुम कार्य करो तो मैं इसे करता हूँ। लेकिन परम चैतन्य की गुहाही देने से पहले उससे वह एककारिता तो स्थापित होनी चाहिए। परम चैतन्य आप ने कह दिया ठीक है, वो आपकी जेब में थोड़े ही बैठा हुआ है, अगर आप में यह स्थिति है और आप उस ऊँची दशा में पहुँच गये कि जहाँ पर आपको परम चैतन्य से एकाकरिता प्राप्त होती है तब आप जिस चीज़ को गलत समझते हैं उसके लिए आप कह सकते हैं।

बड़े-बड़े संतों ने इतने लोगों को बताया है कि तू इतना खराब है, तू इतना दुष्ट है, तू ऐसा क्यों करता है, यह है, वह है, सब उसको बता दिया ताकि उसके मुँह पर कोई डरे नहीं। क्योंकि वे जानते थे कि यह परम चैतन्य का कार्य है, उसमें उनको डरने का क्या! ज्यादा से ज्यादा जेल हो जाएगी। साक्रेटिस को (सत्य) बोलने के लिए जहर दिया गया, तो वो कोई डरा था! उसने कहा जहर या और कुछ पिला दो। उसको कोई भी प्रलोभन दो, कुछ भी करो, वो जिसे सत्य समझता है वो ही बोलेगा। क्योंकि परम चैतन्य सत्य ही बुलवायेगा। जिस वक्त उसे जिसने सत्य बोलना है उससे वो सत्य ही बोलेगा और वो सत्यनिष्ठ होगा। उसकी बुद्धि हर सत्य को एकदम पहचान जाएगी कि कौन सच्चा है, कौन झूठा है, एकदम समझ जाएगी ऐसी उसकी बुद्धि कुशाग्र होगी उसकी बुद्धि को हम सुबुद्धि कह सकते हैं। क्योंकि उस बुद्धि पर आत्मा का प्रकाश आ गया। एक नज़र से वो पहचान सकता है कि कौन कितने गहरे पानी में हैं और फिर उसको परम चैतन्य ही बता देता है कि इस आदमी को कैसे ठिकाने करना है। बहुत से लोग बहुत बार मुझे कहते हैं कि आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए था, आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए था जब, वे उसका परिणाम देखते हैं तो कहते हैं कि अच्छा हुआ आपने ऐसा कहा। नहीं कहा होता तो ये होता ही नहीं।

सो परम चैतन्य का करना धरना और उसका ही सब कुछ पाना है और उसका भोग भी हम नहीं उठा सकते। उसका भोग भी परमात्मा ही उठाते हैं। हम तो सिर्फ उनकी लीला ही देखते रहते हैं और अगर हम किसी चीज़ का भोग उठा ही सकते हैं तो उस आत्मा के लीला का ही भोग उठा सकते हैं। अब अध्यात्म जो है वो इस आत्मा के प्रकाश का, उसके कार्य का, उसके लीला का, सबका एक तरह से विज्ञान है, उसका साइन्स है। अगर जो सच्ची तरह से इस चीज़ को समझ ले, वो समझ सकता है कि सारे सृष्टि का विज्ञान ही आत्मा से आता है और जब तक ये विज्ञान हमारे अन्दर नहीं आएगा तो बाह्य का विज्ञान बिल्कुल ही बेकार है क्योंकि उसमें बहुत ही थोड़ी सी चीज़ है विज्ञान की कि वो जड़ वस्तुओं के बारे में आपको समझा देता है। उसमें सन्तुलन नहीं है, उसमें सामाजिकता नहीं है, उसमें मनुष्यता नहीं है, और उसमें प्रेम नहीं है, उसमें कला नहीं है, उसमें कविता नहीं है, उसमें आदर नहीं है, कुछ भी जो कि मनुष्य वो चीज़ ही नहीं है। एक मशीन जैसी चीज़ है। विज्ञान को समझने के लिए भी मनुष्य को आत्मा का प्रकाश चाहिए। आत्मा के प्रकाश से आप विज्ञान के बहुत से छोर खोल सकते हैं, जो अभी तक नहीं खुले और फिर विज्ञान में जाकर उसका पता लगाये तो समझ सकते हैं। ये और पूछते हैं कि माँ आप कैसे जानते हैं। हम तो नहीं जानते हैं। लेकिन सब जाना

ही हुआ है। जिसने सब कुछ जाना हुआ है उसको जरूरी नहीं कि वो सब कुछ सबको बताये। क्योंकि सबको समझना भी तो आना चाहिए उसको। जरूरी नहीं सबको उपदेश देता फिरे, जो जहाँ है वही रहने दीजिए। जिस वक्त मौका आएगा तब उसे समझाना चाहिए। इस सहजयोग में भी बहुत से लोग बड़े कभी-कभी परेशान हो जाते हैं। मेरा बाप है, सहजयोग में नहीं है, मेरी माँ है, वो सहजयोग में नहीं है, मेरा भाई है वो सहजयोग में नहीं है। नहीं है तो जाने दीजिए। आप तो है न। आप अपने साथ रहिए। जितना मनुष्य अपने साथ आनन्द में रहता है उतना किसी के साथ नहीं रहता, क्योंकि सारा कुछ आप ही के अन्दर है। इसलिए ये नहीं है उसमें, वो नहीं है उसमें, इस तरह की बातें सोचना, फिर यही विचार आता है कि अभी पूरे दालान हमारे हृदय के खुले नहीं। इसलिए हम ऐसा सोचते हैं। जो अब आत्मसाक्षात्कारी है यही आपके बाप, भाई, बहन हैं, और इनको तो कोई वो प्रश्न नहीं है। यह प्रश्न उन लोगों को होता है जो अभी भी आधे अन्धकार, आधे प्रकाश में हैं। वो ये सोचते रहते हैं कि, अभी ये मेरा भाई उसमें फंसा हुआ है, मेरी बहन उसमें फंसी हुई है। अपने आप से वो आ जाएंगे किसी से जबरदस्ती नहीं हो सकती। इसी तरह का एक आत्मसाक्षात्कारी सोचता है। वो देखते रहता है, सबको देखते रहता है और आनन्द उठाता है। मनुष्य के पागलपन में भी वो आनन्द उठा लेता है और उसके स्थानापन में भी वो आनन्द उठा लेता है। कोई अगर बेवकूफी की बात करता है, तो उसका आनन्द भी उठा लेता है। और कोई समझदारी की बात करता है तो उसका भी आनन्द उठा लेता है। सब चीज़ में उसे एक आनन्द का स्रोत दिखाई देता है। कोई मनुष्य अगर विक्षिप्तता से रहता है, तो उसमें भी उसे लगता है कि, देखो, यह कैसा एक नाटक है, जैसे किसी नाटक के बारे में कोई नाटककार लिखता है कि एक विक्षिप्त को दिखा दिया या गुस्सैल आदमी दिखा दिया, बड़ा क्रोधी और उसका मज़ाक बन रहा है। तो जब एक आत्मसाक्षात्कारी, क्रोधी मनुष्य को देखता है तो फौरन उसे क्या लगता है, कि वाह भई वाह क्या क्रोध चढ़ रहा है इस पर। अब तो और भी चढ़ गया। अब तो सिर्फ आज्ञा चक्र में था और अब तो सहस्रार में भी चढ़ गया। अब न जाने क्या-क्या होने वाला है। वह तो यही सब सोचते रहता है। उसको कोई घबराहट नहीं होती। पर वह तो यह सोचता है कि इसके क्रोध का जो चला है कहीं ऐसा न हो जाए कि उसका सर फट जाए या कुछ तो फिर कहेगा कि थोड़ा सा ठण्डा होकर ही सोचें। वह कहेगा नहीं रहने दीजिए। मैं समझता हूँ इसे। तो ठीक है, समझिये। मैं भी आपको समझ रहा हूँ। तो वो बैठे-बैठे उसके बाद अगर उससे कहिए कि आप नाटक लीखिए। तो वो इतना सुन्दर नाटक लिख लेगा खुद ही आदमी का कि आप हँस-हँस के लोट-पोट हो जाएंगे।

उसमें जो यह दृष्टि है इसकी, ये किसी में उलझी हुई दृष्टि नहीं है। इसे निरंजन दृष्टि कहें या साक्षी-स्वरूप। साक्षी-स्वरूप दृष्टि में वो सारे समाज का इतना सुन्दर चित्रण कर देता है कि सिवाय हँसी के आपको कुछ भी समझ में नहीं आता कि वाह भाई, क्या ये चित्रण बनाया है। यानी गम्भीर से गम्भीर में भी आप ये समझ सकते हैं कि बहुत सी बातें ऐसी हैं जो कि दिखने को गम्भीर लगती हैं लेकिन उसमें एक तरह का बड़ा छिपा हुआ सन्देश है। हर चीज़ में। यों तो हुआ कि जब युद्ध देखते हैं तो बड़ी उद्विग्नता आ जाती है। लगता है ये क्या हुआ, क्यों मार रहे हैं बिचारे सीधे-साधे लोगों को क्यों मार रहे हैं। अगर ये जो उद्विग्नता आ जाए हमारे साक्षात्कारियों को तो फौरन उसकी खबर चली जाएगी परम चैतन्य को, और जो आततायी ये काम करेगा उसका ठिकाना हो जाएगा, उसका इलाज हो जाएगा। वो उद्विग्नता भी एक तरह से कार्यान्वित होती है। कोई आह्लाददायी चीज़ है तो वह ठीक ही है। लेकिन कोई ऐसी भी चीज़ हों, जिसको देखकर उद्विग्नता आयें, पर मनुष्य सोचे कि ऐसे कार्य क्यों हो रहे हैं। ऐसे नहीं होने चाहिए, तो फौरन उसका इलाज हो जाएगा। बहुत सी बातें इस तरह होती रहती हैं। जैसे कि मैं अपने बारे में बता सकती हूँ कि जब मैं रशिया (रूस) में पहली बार गई तो रशिया में ७-८ दिन रहने के बाद फिर घर जाने पर फिर से बात निकली कि फिर से वहाँ योग का एक सेमिनार होने वाला है। तो हमारे घर में ये कहा गया कि अभी-अभी जा कर आए हो, फिर आप दो दिन के लिए जाओगे! क्या फायदा है। जाने दीजिए, लोग हैं सम्भाल लेंगे। तो मैंने कहा, 'नहीं मुझे वहाँ जाना जरूरी है।' तो कहने लगे 'क्यों?' मैंने कहा कि 'जो इस्टर्न ब्लॉक है उसे तोड़ना है।' वह कहने लगे 'कैसे टूटेगा?' तो मैंने कहा, 'बस टूटेगा।' क्योंकि वहाँ इस्टर्न ब्लॉक के सब लोग वहाँ आएंगे, और उन में से जो लोग पार हो जाएंगे वो जाते ही वहाँ परम चैतन्य अपना काम कर लेगा चाहे एक-एक ही आदमी हो। आश्चर्य की बात यह है कि उस योग सेमिनार में मैं सिर्फ पैतालीस मिनट ही बोली और पन्द्रह मिनट में आत्मसाक्षात्कार दिया और उसके बाद वो जितने भी लोग ये अपने-अपने देश में गए और वहाँ ये कार्य हो गया। सो परम चैतन्य के कार्य के लिए अब जरूरी है कि आत्मसाक्षात्कारी लोग हों, या उनका साधन हो। परम चैतन्य का कार्य आत्मसाक्षात्कारी लोगों के ही इच्छा के अनुसार होता है। अगर आपकी इच्छा हो तो वो कार्य हो सकता है। पर आपकी इच्छा में भी शुद्धता होनी चाहिए। ऐसी

इच्छा नहीं जिसमें आप स्वार्थी हों, या ऐसी इच्छा नहीं जिसमें आप अपने ही बारे में सोचते हैं, क्योंकि ये कार्य आत्मा के ही बल पर होता है और आत्मा जो अपना शिव है जैसा मैंने बताया वो बिल्कुल स्वच्छन्द, निस्पृह, निराकार, निरन्तर और नित्य इस तरह की प्रकृति का है। इसलिए जो मनुष्य आत्मसाक्षात्कारी हो जाता है, उसमें ये सारे ही गुण आ जाएंगे। ये गुण अगर आपके अन्दर नहीं आए जैसे आपसे मैंने कहा कि, बाह्य से आप में सारे आवरण हों, आप राजा हो, आप चाहे कुछ भी हो, अन्दर से आप निस्पृह हैं, अन्दर से आप छूटे हुए हैं, आप किसी चीज़ से चिपकते नहीं, अन्दर से आप किसी से द्वेष नहीं करते, किसी का भक्षण नहीं करते, किसी के लिए आपको लालसा नहीं होती; ये सारे षडरिपु अपने आप छूट जाते हैं।

तो आत्मा का सबसे बड़ा प्रकाश यही है कि आपको कोई प्रयत्न नहीं करना है। वे कहते हैं, 'मन को वश में रखो' पर किसी को वश में रखने की जरूरत नहीं। जैसे ही आप आत्मसाक्षात्कार में उतरते जाते हैं, उस प्रकाश में अपने आप अन्धता दूर होती जाती है और ये बड़ा भारी लाभ है, जिसने इस लाभ को अभी तक प्राप्त नहीं किया, उसे ये सोचना चाहिए कि अभी हमारा आत्मसाक्षात्कार पूरी तरह से फलित नहीं हुआ। अगर हमारा आत्मसाक्षात्कार पूरी तरह से फलित हुआ है तो हमारे जीवन में, हमारे आस-पास के समाज में, हमारे सहजयोग के समाज में, हर जगह, एक नवीन तरह का मनुष्य तैयार होना चाहिए, जो आत्मा स्वरूप है, जो आत्मा के प्रकाश से प्लावित है। जिसमें शिव का दर्शन होता है। अब शिवजी को देखा है आपने, कि जब उनका विवाह हुआ तो उनकी जो पत्नी थी, वो तो बहन थी विष्णुजी की और विष्णु जो थे वे कुबेर थे, उनकी बहन से शादी हो रही थी और ये अपने नन्दी पर बैठ करके, उसमें न लगाम था न कुछ दोनों पैर लगा कर नन्दी पर बैठ गये और नन्दी कूदता हुआ चला आ रहा था और वे नंग-घड़ंग उस पर बैठे हुए हैं। यह सब अभिव्यक्ति है कि उनको किसी चीज़ की लगन नहीं थी, उनको किसी चीज़ का ये विचार नहीं कि मुझे ये चाहिए, नहीं तो कोई सोचेगा कि भाई, मैं कुबेर की बहन से शादी कर रहा हूँ, कौन से कपड़े पहनूँ? कौनसे रथ से जाऊँ? दस दिन पहले इनके कपड़े बनेंगे, उसके जूते बनेंगे, उसका सारा अवतार बनेगा, तब वह पहुँचेगा। पर शिवजी ने सोचा कि मेरा तो विवाह हो रहा है, इससे ज्यादा कोई बात मुझे मालुम नहीं। उन्होंने कोई विचार नहीं किया। और उनके साथी जो थे, वह भी उन्ही जैसे, किसी के एकाक्ष थे, किसी के हाथ पैर गले हुए, सबको एक साथ लेकर, कोई बात नहीं। इसका प्रतीक रूप से ये अर्थ होता है कि आपके पास शारीरिक कोई भी व्यंग हो, या कोई भी चीज़ हो जब तक आत्मा का प्रकाश आपके अन्दर है कोई सी भी आपकी शक्ति हो, कोई सा भी आपका रूप हो, तो शिव आपको मानते हैं और शिव अपनी बरात में आपको ले जाएंगे। वहाँ सब लोग हैरान हैं कि ये दूल्हा मियाँ कैसे चले आ रहे हैं, नन्दी पर बैठ कर के, दोनों तरफ दोनों पैर करके, पर ये तो स्वच्छन्द है, इनको कोई परवाह नहीं। निस्पृह है। बाते हुई होगी वहाँ पर कि ये कैसा दूल्हा चला आ रहा। तो पार्वती जी को अच्छा नहीं लगा क्योंकि वे जानती थी कि मेरा पति जो है, वो आत्मस्वरूप है। इसलिए उन्हें निःसंग कहते हैं।

इसमें हमारे दो अंग दिखाई देते हैं। एक तो हमारा अंग कि जो आज हम विष्णु स्वरूप हैं जो बाह्य में है और अन्दर का अंग जो है वो हमारे शिव है और उस शिव के जैसे हमें निस्पृह, स्वच्छन्द और निरासक्त होना चाहिए। किसी चीज़ की आसक्ति हमारे अन्दर नहीं आ सकती, अगर हम आत्मा स्वरूप हैं। फिर बाह्य में आप श्रीकृष्ण हो जाएं या आप और कोई हो जाएं लेकिन अन्दर का जो शिव है वो अपनी जगह स्थिर रहेगा। बाह्य का अंग जो है वो महत्वपूर्ण अब नहीं रहा जब कि आप आत्मा स्वरूप हो गए। और जब आत्मा स्वरूप हो गये तो इन सब चीज़ों के लिए आपकी जो भावनाएं हैं, वो एक दम बदल जाएंगी। श्री एकनाथ जी का सुन्दर उदाहरण है कि वह कावड़ ले कर पहुँचे थे द्वारिका, वहाँ चढ़ाने और ऊपर चढ़के उनको जाने का था। ये अब भक्ति का माहौल उनका था। सब लोग गये कावड़ में पानी भर कर। लेकिन उस वक्त उन्होंने देखा कि एक गधा प्यास से मरा जा रहा था। उन्होंने उसको पानी पिला दिया। लोगों ने कहा क्या करते हो? वहाँ से आप कावड़ भरके आप इतनी दूर पैदल चल के, पानी भर के आए और इस गधे को पानी पिला दिया। तो उन्होंने कहा कि 'तुमको नहीं मालुम, मेरा श्रीकृष्ण यहाँ तक उतर के आया पानी पीने।'।

ये जो भक्ति का सूक्ष्म भाव है, वो एक आत्मसाक्षात्कारी ही समझ सकता है, कि बाह्य को देखना कि हम कावड़ ले कर गए और 'हमने' जाकर के उनको समर्पित किया। हम कौन होते हैं? जब वही भाव हट गया, 'हम' ही भाव नहीं रहा और वहाँ पर एक बिचारा प्यासा प्राणी पड़ा हुआ था उसको आपने पानी पिला दिया, ठीक है परम चैतन्य ने ये कार्य कर दिया। हमसे क्या मतलब। इसलिए बहुत सी बातें जो संतों की हम समझ नहीं पाते हैं, वो अब समझ पाइयेगा क्योंकि अब आपने आत्मसाक्षात्कार पाया है

और आपसे भी ऐसे कार्य हो जाएंगे और जो नासमझी हमारे अन्दर रही संतो के कारण कि उनका जीवन विक्षिप्त जो हमें लगता था, क्योंकि हम स्वयं विक्षिप्त हैं। जब पागलखाने में जाइये तो अच्छा भला आदमी भी पागल लगने लग जाता है। उसी तरह इस पागल दुनिया में वो आये और ये समझाने की कोशिश की, पर किसी ने समझा नहीं उन्हें और उनको तकलीफ दी और परेशान कर दिया क्योंकि वे आत्मस्वरूप थे, वे शिव में स्थित थे, वो शिव स्वरूप थे। शिव स्वरूप आदमी बाह्य में कैसा भी रहे, उसकी शिव स्थिति बाह्य में भी प्रकाशित रहती है, निखरती रहती है। सबसे बड़ी चीज़ है औदार्य (उदारता)। औदार्य चीज़ जो है, वह शिव शक्ति है। इतना उदार हृदय वो है कि उन्होंने राक्षसों को तक वरदान दिया। क्यों? 'क्योंकि देता हूँ मैं वरदान।' अब मेरे पास भी कुछ लोग आते हैं कि माँ हमें वरदान दो। मैं जानती हूँ ये लोग बड़े खराब हैं। 'चलो तुमको वरदान चाहिए, लो।' परम चैतन्य देख लेगा इनको, मुझे क्या करने का है। राक्षसों को भी वरदान दिया। चलो, तुम्हे चाहिए, लो। क्या चाहिए ले जाओ। एकदम औदार्य। इसको कहना चाहिए कि एक अन्धा औदार्य, आप कह सकते हैं। यह अन्धा नहीं है क्योंकि पूर्ण विश्वास है कि परम चैतन्य वहाँ बैठा हुआ है, मेरी शक्ति है, मेरे सारे कार्य को कर रही है। मैं तो यों ही कहने के लिए, 'ले जाओ।' यहाँ से ले जाते ही रास्ते में विष्णूजी ने उसका हाल खराब कर दिया। जो सब चीज़ को जानते हैं, उनके लिए यह प्रश्न नहीं रहता कि इनका क्या होगा, क्या नहीं होगा। वह सब जानते हैं। उसी प्रकार जो शिव में स्थित है, वह अपने में बड़ा समादानी होता है और वह सब कुछ जानता है, सब कुछ समझता है, पर वह कहेगा नहीं। लेकिन वह सब कुछ जानता है। और सबसे बड़ी शिव की शक्ति है प्रेम, निर्वाज्य प्रेम-जिसमें कि कोई ब्याज नहीं देना, ब्याज तक नहीं देना है, निर्वाज्य। उनकी करुणा की शक्ति इतनी जबरदस्त है कि उस करुणा को देखकर के आप भी अचम्भे में पड़ जाएंगे।

मुझे बहुत लोग कहते हैं कि, माँ तुमने इस आदमी की क्यों मदद करी, यह तो बहुत खराब आदमी है। उसने ये किया, वो किया। भाई अब क्या करें, वो आया, ठीक है, हो गया। चलो जाने दो। जो हो गया, हो गया, चलो जाने दो। कर दिया, इसमें क्या करना। अब वह करुणा ही है, क्या किया जाए। कोई रोक सकता है? जब सारा शरीर ही करुणा से भर जाए तो कोई भी मनुष्य पास में आ जाए तो वह करुणा का कार्य करेगा ही। ये शरीर छोड़ेगा ही नहीं। उसे क्या करें! इसी तरह एक आत्मसाक्षात्कारी मनुष्य का करुणा का भाव बढ़ता है और उसकी जो नशा चढ़ती है वो ऐसी नशा है कि अकेले मजा नहीं आता। आप आत्मसाक्षात्कारी हो गये तो चुप नहीं बैठने वाले कुछ भी करो। कहेंगे कि चलो, मैं हो गया, दस आदमी और इसे पिये तो मजा आएगा। देखेंगे, चलो भाई, उसको भी करो, इधर से उधर दौड़ेगा। जाएगा सबसे कहेगा, देखो, आत्मसाक्षात्कार कितनी महत्वपूर्ण चीज़ है। इसमें उसको तकलीफें होंगी ही। लोग उसे सतायेंगे, बुरा कहेंगे। उस पर कोई असर नहीं आने वाला है क्योंकि वह परम चैतन्य का एक, जैसा मैंने कहा, कलाकार के हाथ में कूचली (ब्रश) है, वैसे कूचली है। उसको इसकी परवाह नहीं। वह तो कलाकार जाने, मुझे क्या? मैं तो बीच में बैठा हुआ देख रहा हूँ कि कोई चित्र बना रहा है। उसी प्रकार उसकी प्रवृत्ति ही इतनी अनासक्त होती है कि वो अत्यन्त शक्तिशाली हो जाता है। उसका भय, या आशंकाएं सब खत्म हो जाती है और बहुत ही सुन्दर कार्य को बड़े खूबी से कर लेता है। और लोग आश्चर्य करते हैं कि यह कैसे कर लिया। कोई चीज़ समझाता भी इतनी सुन्दरता से है कि मनुष्य का अगर अहंकार है तो उससे जा के नहीं कहेगा कि तू बड़ा अहंकारी है, कभी नहीं कहेगा। ये कभी आत्मसाक्षात्कारी नहीं कहेगा। यह नहीं, जैसे कुछ सहजयोगी कहते हैं कि तुम्हे भूत लग गया, ऐसा कभी नहीं कहना चाहिए। उसका तरीका भी, एक श्री रामदास स्वामी का बताती हूँ आपको।

एक बार शिवाजी को थोड़ा अहंकार हो गया क्योंकि किला बन रहा था। उसमें हजारों लोग काम कर रहे थे। उनको थोड़ा अहंकार हो गया कि देखो, मैं कितने लोगों को पालपोस रहा हूँ। तब रामदास स्वामी वहाँ पहुँचे, वो तो हर जगह पहुँच जाते थे। उन्होंने देखा कि इनको अहंकार हो गया है। कुछ कहा नहीं उन्होंने। वहाँ एक बड़ा सा पत्थर पड़ा था। कहने लगे जरा इसे धीरे-धीरे तोड़ दो। पत्थर को तोड़ते-तोड़ते एक छोटे से नारियल के जैसे पत्थर पर आ पहुँचे। तो उस पत्थर को हाथ में लिया और एक हाथ से खटाक से मारा तो देखा क्या कि उसके अन्दर में पानी है और पानी के अन्दर में मेंढ़क बैठा है। शिवाजी ने एकदम उनके चरण पकड़ लिए कि जिसने आपको जीव दिया है वह पानी भी देता है, मैं कौन होता हूँ देने वाला। यह अहंकार किस तरह से तोड़ा जाए। आपको आश्चर्य होगा कि साइन्स भी कहता है कि मेंढ़क जो है वो बगैर हवा के, अगर उसके पास पानी हो, तो रह सकता है।

तो आपको अगर किसी का अहंकार भी तोड़ना है तो उससे कहने की जरूरत नहीं कि तु बड़ा अहंकारी है। आप सिर्फ सोच ही लीजिए कि वो अहंकारी है तो, परम चैतन्य उसकी व्यवस्था कर देगा और उसका अहंकार टूट ही जाएगा। पर सबसे पहले एक आत्मसाक्ष मनुष्य को यही सोचना चाहिए कि मैं अब शिव में शरणागत हूँ, मेरी आत्मा में मैं शरणागत हूँ और मेरी आत्मा के ही कारण ये परम चैतन्य सारा कार्य करने वाला है और इसलिए मुझे कोई किसी चीज़ की चिन्ता नहीं। मेरा कौन बैरी है! कौन मुझे मार सकता है? मैं तो परम में जी रहा हूँ। सारा कार्य जब यही कर रहा है, तो मैं कौनसा कार्य कर रहा हूँ? इस तरह की जब भावना हो जाए तब कहना चाहिए कि हमारे अन्दर के शिव को हमने पहचाना है। हम बाह्य के अपने शरीर वगैरह सबको खूब समझते हैं प्रतिष्ठा को समझते हैं, पर इस शिव को पहचानना चाहिए जो हमारे अन्दर है, जो हमारे अन्तरतम में है। जो हमारी ही सारी शक्ति का आधार, जिसे कि हम सच्चिदानंद कहते हैं, उस शिव को ही हमें मानना चाहिए।

आप सबको अनन्त आशीर्वाद!